कबीर के साहित्य में एकात्मवाद

KABIR KE SAHITYA ME EKATMAVAD

उमा चौधरी

प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

New Horizon College Kasturi Nagar Bangalore - 43

हिंदी साहित्य के हजार वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। संत कबीर के आदिकालीन एवं प्रभावशाली होने के नाते उनके पथ-प्रदर्शन में लिखे गये पूरे संत-साहित्य को भी न्यूनाधिक उक्त दृष्टि के ही अनुसार देखने तथा उसे नीरस एवं महत्वहीन ठहराने की एक प्रवृति भी पायी जाती है जिस कारण उनकी कथन शैली की कतिपय विशेषताओं के आलोक में, वैसी धारणा के ऊपर कुछ विचार कर लेना कदाचित् अनुचित नहीं कहा जा सकता।

कबीर स्वानुभूति पर आधारित ज्ञान को ही सर्वाधिक महत्व दिया करते थे और उसे सदा विवेक वाली कसौटी पर कसते हुए, अपने जीवन के दैनिक व्यवहार में उतारने के भी पक्षपाती रहे। इस कारण उनका, कथनी व करनी के बीच सामंजस्य लाने के लिए यत्न-आग्रह करना भी प्रसिद्ध था।(1)

ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए सच्चे मन की आवश्यकता है क्योंकि ईश्वर हमारे मन में विधमान है। कबीर धर्म गुरु थे इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाध होना चाहिए, परन्तु विद्वानों ने नाना रुप में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया है। हिंदी साहित्य के हजार वर्षो के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। शारीरिक सौंदर्य और सांसारिक वैभव दो बहुत बडें आकर्षण मनुष्य के सामने है। कबीर ने दोनों के प्रति अरुचि उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। शरीर को कहीं धूलि की पुड़िया कहीं पानी का पुतला बताया है। संसार को वह हाट मात्र , सराय मात्र समझते हैं।

कबीरदास जी एक जबरदस्त क्रांतिकारी पुरुष थे। कहते हैं कि अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों के विकट बने रहते हुए भी उन्होंने अपने विचार बड़े स्पष्ट शब्दों में एवं निर्भिकता के साथ स्पष्ट किए। जिस कारण उनके द्रवारा एक महान भावी आन्दोलन को गति मिली। उन्होंने किसी भी वर्ग की त्रुटियों की ओर अंगुली-निर्देश करते हुए, उन्होंने उन पर कड़े से कड़े शब्दों में फटकार बतलाई। उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि इसके कारण उनका सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता है अथवा अधिकारियों की ओर से दण्ड का भाजन तक भी बनना पड़ सकता है। संत कबीर की गणना उन महान पुरुषों में निसंदेह की जा सकती है,

जिन्होंने अपने समसामायिक समाज की गतिविधि को भलीभांति परखना तथा उसे आवश्यक मोड़ देना अपना कर्तव्य समझा।

कबीर के उपदेशों की दूसरी भूमि मन और उसके अनंत विकार हैं उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, अहंकार की बार-बार निंदा की है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ह्रदय की उज्जवलता पर उन्होंने बराबर जोर दिया है।(2)

कबीर की यह घर-फूँक मस्ती , फक्कड़पन, लापरवाही और निर्मम अक्खड़ता उनके अखंड आत्मविश्वास का परिणाम थी। उन्होंने कभी अपने ज्ञान को, अपने गुरु को और अपनी साधना को संदेह की नजरों से नहीं देखा। अपने प्रति उनका आत्मविश्वास कहीं भी डिगा नहीं। कभी गलती महसूस हुई तो उन्होंने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा कि इस गलती के कारण वे स्वंय हो सकते है।(3)

संत कबीर के कथन की एक विशेषता यह है कि कभी-कभी सुझाव या उपदेश देते समय उसे ऐसे विस्तार के साथ समझा देना चाहते है, जिससे उसके द्वारा दूसरे की आँख अपने आप खुल जाएँ और वह तदनुसार कार्य भी करने लगे । इस प्रकार अपने मन को , किसी एक ऋणी व्यक्ति के रुप में संबोधित करते हुए वे कहते हैं- अरे मन तू पहले पराये का लेन-देन चुकाकर उसके लेखेजोखे को तो भर ले यदि ऋण लेकर तूने अपने व्यापार को सवाया भी कर लिया और उसमें मुझे कलदर सिक्के भी मिले तो क्या हुआ?

संत कबीर ने विभिन्न तीर्थो की आलोचना की है। उन्होंने वहाँ पर जाकर स्नान करने आदि को निरर्थक ठहराया है तथा इन बातों में विश्वास करने वालों के भोलेपन का उन्होंने उपहास तक भी किया है। उनका कहना है कि अपने भीतर विकारों के वर्तमान रहते हुए भी, तीर्थस्नान करने मात्र से कोई वैकुण्ठ नहीं जा सकता। फिर यदि नहाने के ही बल से गति मिल सके तो मेंढ़को को तो हम निरन्तर ऐसा करते पाते हैं। बनारस काशी में रहकर वहीं मृत्यु आ जाने पर भी कभी नरक से छुटकारा नहीं मिल सकता।

संत कबीर का नाम बहुधा किसी एक विशिष्ट क्रांतिकारी के रुप में बड़े श्रद्धाभाव से लिया जाता है। कहते है कि अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों के बने रहते हुए भी उन्होंने अपने विचार बड़े स्पष्ट शब्दों में एवं निडरता के साथ प्रकट किये जिसके कारण उनके द्वारा एक महान भावी आन्दोलन को गति मिली। कहा तो यहाँ तक जाता है कि संत कबीर को इसके कारण सचमुच अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ गयी, किन्तु उन्होंने अपने मार्ग से डिगना उचित नहीं समझा। उनकी न केवल समाज के भीतर हँसी उड़ाई गयी, प्रत्युत उनके प्रति विविध कठोर शब्दों के प्रयोग भी किए गये। (4)

कबीर कुलभिमान और वर्ण-व्यवस्था की घोर निन्दा करते हैं। वे भिन्न-भिन्न वर्णो के समझे जाने वाले लोगों को जन्म से ही अभिन्न अर्थात एक समान समझते हैं । वे कहते हैं कि यदि तुम चाहते हो कि तुम्हें ईश्वर की प्राप्ति हो तो तुम पाखण्ड और अभिमान भरी मनोवृत्ति का त्याग कर मार्ग में पाये जाने वाले साधारण कंकड़ो के समान पददलित बन जाओ।

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहि जाइ।

मानि बड़े मुनिवर मिले, मानि सबनि को खाइ।।

जब एक ही प्रकार के साधनों द्वारा मानव शरीर की सृष्टि होती है और सभी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का मूल एक ही ज्योति में निहित समझा जाता है तो ब्राहमण एंव शूद्र के वर्गीकरण स्वरुप भिन्नता की दीवारें खड़ी करना निरी मूर्खता के सिवाय और कुछ नहीं।

कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है , पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा, वे बराबर अपने को ना हिंदू ना मुसलमान कहते रहे। आध्यात्मिक पक्ष में निसंदेह यह बहुत ऊँचा भाव है पर कबीर ने कुछ इस ढंग से अपने को उभय विशेष बताया है कि कभी-कभी यह संदेह होता है कि वे आध्यात्मिक सत्य के अतिरिक्त एक समाजिक तथ्य की ओर भी इशारा कर रहे हैँ।

जो लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित हैं वे भी कबीरदास को अपना मार्गदर्शक मानते हैं। कबीरदास जी से अधिक जोरदार शब्दों में एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

भक्ति के क्षेत्र में कबीरदास ने बाहरी आडम्बर को स्थान नहीं दिया है। राम-नाम की माला फेरने या सिर मुड़ाने से भक्ति नहीं मिलती। उन्होंने तीर्थ, व्रत, मूर्ति-पूजा, बलिदान, जप-तप आदि का खंडन किया है। कबीर ने जप, माला, तिलक का विरोध कर मन को पवित्र करने का सन्देश दिया है। कबीर कवि थे परन्तु उनका समाज-सुधारक तथा सन्त और धार्मिक रुप उनके कवि रुप से अधिक मुखर था।

कबीर सहाब ने गुरुतत्व को गुरु सतगुरु के नाम से व्यक्त किया है। सतगुरु की महिमा को अनंत बताते हैं कहते हैं कि गुरु की कृपा से अकथ कहानी अथवा परमतत्व के रहस्य का पता चल जाता है। उनकी कृपा से गूढ़ातिगूढ़ विषय के 'सम्पट' अथवा पिटारी का भी बिना प्रयास खुल जाना सम्भव है।

कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति के बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी। उन दिनों उत्तर भारत के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अन्तर था। एक टूट जाता था परन्तु झुकता न था। एक के लिए समाज की ऊँच-नीच भावना ,मजाक और आक्रमण का विषय थी दूसरे के लिए मर्यादा और स्फूर्ति का।(5)

संत कबीर की गणना उन इने-गिने महान् पुरुषों में निस्संदेह की जा सकती है, जिन्होंने अपने समसामायिक समाज की गतिविधि को भलीभांति परखना तथा उसे आवश्यक मोड़ देना अपना परम कर्तव्य समझा। उन्होंने अपनी परिस्थितयों को बदल डालने की अपेक्षा, अपने निजी दृष्टिकोण में ही आमूल परिवर्तन लाने पर कहीं अधिक बल दिया है। (6) उनको अपने समाज के अन्तर्गत चाहे हो और न इसके लिये उन्हें पर्याप्त योग्यता अर्जित करने का कभी समुचित अवसर ही मिला हो, वे इसके कारण कभी विचलित व हताश नहीं हुए। उनके पास अपना आत्मबल था, जिस कारण उन्होंने भटकने वालों को, चाहे वे किसी भी उच्च-स्तरीय वर्ग के क्यों न रहे हो, अपनी भूलों पर एक बार दृष्टिपात करने के लिए सजग कर देना चाहा।

उनके इस प्रकार के आदर्श को अपने सामने रखकर अन्य अनेक संतो ने भी कार्य किया परन्तु संयोग की बात है कि स्वंय उनके नाम पर प्रचलित कबीर पंथ के अनुयायियों तक में भी कदाचित् कोई ऐसा महापुरुष नहीं हुआ जो उनके मौलिक और क्रांतिकारी विचारों को पूर्ण रुप से आत्मसात् कर उन्हें एक बार फिर आगे ला सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) कबीर साहित्य चितंन -आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ संख्या - 3

(2) प्राचीन कवि - विश्वम्भर मानव - पृष्ठ संख्या - 62

(3) कबीर - हजारी प्रसाद दिवेदी - पृष्ठ संख्या - 128

(4) कबीर साहित्य चिंतन - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - पृष्ठ संख्या - 182

(5) कबीर - हजारी प्रसाद दिवेदी - पृष्ठ संख्या- 123

(6) कबीर साहित्य चिंतन - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - पृष्ठ संख्या - 184